इकाई 9 कृषक अर्थव्यवस्था*

संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 किसान तथा कृषक अर्थव्यवस्था

9.3 भारतीय किसान तथा कृषक संरचना

9.4 कृषक अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

9.5 किसानों की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति

- 9.5.1 आजीविका का एक मात्र आधार कृषि भूमि
- 9.5.2 पारिवारिक श्रम
- 9.5.3 पूंजी का संचयन
- 9.5.4 जीवन निर्वाह खपत के लिए उत्पादन

9.6 किसानों की राजनैतिक अर्थव्यवस्था

9.7 किसान आंदोलन

- 9.7.1 प्रथम चरण 1857–1921
- 9.7.2 द्वितीय चरण 1923–1946
- 9.7.3 आजादी के बाद का चरण

9.8 सारांश

9.9 संदर्भ

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे –

- किसान कौन है तथा किसानों की अर्थव्यवस्था का वर्णन,
- भारत किसान तथा उनकी संरचना की व्याख्या,
- किसानों की विशेषता तथा कृषक समाज के आर्थिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं का वर्णन,
- कृषक समाजों की राजनैतिक अर्थव्यवस्था का वर्णन,
- भारत में किसानों आंदोलनों के विविध चरणों का जानकारी।

* डॉ. ऐजाज अहमद गिलानी द्वारा लिखित।

9.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई 'घरेलू उत्पादन प्रणाली' में आपने घरेलू उत्पादन प्रणाली सहित विविध अर्थव्यवस्थाओं में अनेक प्रकार की उत्पादन प्रणालियों के बारे में पढ़ा। इस इकाई में आप किसानों की अर्थव्यवस्था के बारे में पढ़ेंगे। अतीत काल से विभिन्न काल खंडों में कृषक समाज विश्व के सभी देशों में मौजूद रहे हैं। कृषि मानव की सर्वप्रथम आर्थिक प्रणाली है। इस इकाई में हम किसानों की आम धारणाओं तथा उनकी अर्थव्यवस्था का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में भारत के कृषक–समाज की संरचना तथा आंतरिक गतिविधियों पर भी प्रकाश डाला जायेगा। भारत में कृषि समाज के तीन प्रमुख घटक हैं – कृषि भूमि के स्वामी, खेतों में हल चलाने वाले किसान तथा कृषि कार्यरत भूमिहीन मजदूर। इस विस्तृत जानकारी के द्वारा इस इकाई में किसानों की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को चिन्हित करने का प्रयास किया जायेगा। भारतीय कृषक समाज किस तरह भारत की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को चिन्हित करने का प्रयास किया जायेगा। भारतीय कृषक समाज किस तरह भारत की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति का अभिन्न अंग है, इस पर भी प्रकाश डाला जायेगा। किसानों की चार महत्वपूर्ण पहलू हैं – (i) भूमि, जो आजीविका का साधन है, (ii) परिवार श्रम, (iii) पूंजी तथा जीवन–निर्वाह, (iv) बाजार व्यवस्था के उद्भव के साथ किसानों का बाह्य शक्तियों द्वारा शोषण की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी। इन शोषणों के विरुद्ध बड़े–बड़े प्रदर्शन व आंदोलन हुए। इस इकाई में कृषक आंदोलनों तथा उनसे जुड़ी गतिविधियों का तीन चरणों में वर्णन किया जायेगा जिससे भारत में विभिन्न काल खंडों में हुए समस्त आंदोलनों को समझने में आसानी रहे।

9.2 किसान एवं कृषक अर्थव्यवस्था

किसानों की अर्थव्यवस्था की गहराइयों में जाने से पहले हम इससे जुड़े प्रमुख पहलुओं को जानने का प्रयास करेंगे। किसान कौन हैं, यह समझायेंगे तथा फिर किसानों की अर्थव्यवस्था पर विचार करेंगे।

किसान वह व्यक्ति है जो खेतों में काम करता है और फसलें उगाता है। कोई भी व्यक्ति जो कृषि कार्यों में लगता है – जो खेती की जमीन का स्वामित्व ग्रहण करता है, भूमिहीन श्रमिक की भूमिका में होता है या खेतों में काम करने और फसल उगाने का काम करता है, उसे किसान कहा जायेगा। सामाजिक विज्ञान से जुड़े अनेक विद्वान किसानों को विषमरूपी समूह मानते हैं। जबकि कुछ विद्वान किसानों को समरूप समूह मानते हैं। किसान की व्याख्या के बारे में विभिन्न विद्वानों के बीच स्पष्टता नहीं है, इसीलिए उनके विचार परस्पर मेल नहीं खाते। ए. एल. क्रोबर की 1948 में एक शोध प्रकाशित हुआ था – एंथ्रोपोलॉजी। इस शोध में क्रोबर ने किसान शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उसने (1948) किसान को समरूप समूह कहा है जो बाजार से अपने आर्थिक सम्बंधों को साझा करता है। उसने किसान को ''पार्ट सोसाइतजी विद पार्ट कल्चर' (Part Societies with part culture") कहा है (क्रोबर, 1948) यह परिभाषा बताती है कि किसान एक बड़े समाज के अंग होते हैं, परन्तु वे अपनी अलावा सांस्कृतिक पहचान रखते हैं – जैसे खेतों से उनका रिश्ता आदि। यह पहचान उन्हें दूसरों से अलग करती है।

बॉक्स 9.0

'संस्कृति' शब्द का उद्‌गम फ्रांसीसी भाषा से हुआ लगता है। लातिन भाषा के 'कोलरी' (colore) शब्द से इसकी निकासी मानी जाती है। जिसका अर्थ से धरती से जुड़ा हुआ तथा फसल उगाने तथा पोषण करने वाला। इतना ही नहीं अन्य अनेक ऐसे शब्दों से भी जो ''उगाने की क्रिया से जुड़ी गतिविधियों की व्याख्या करते हैं।'' (डी. रोसी, 12, जुलाई, 2017)।

इसलिए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि 'कल्चर' शब्द 'एग्रीकल्चर' से निकला है।

लम्बे समय से किसान 'दमन' और जोर–जबरदस्ती सहते आये हैं। परन्तु उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति समाज में बड़ा परिवर्तन लाई है। 18वीं शताब्दी के किसानों की उत्पादन प्रणाली शेष समाज से एक दम अलग है। उसके बाद की शताब्दियों में जमीन का गैर–बराबर बंटबारा किया गया था, उनकी आय तथा बाजार से उनकी सम्बंध पद्धतियों का भी उसी तरह बंटवारा किया गया था। यह असमानता हाथ से काम करने वाले तथा दूसरों से काम करवाने वाले दोनों प्रकार के किसानों पर लागू होती है। खेतों में काम करने वाले मजदूर वर्ग के समर्थन में खड़े हुए जबकि स्वयं काम न करने वाले किसान जो अपने खेतों में भूमिहर मजदूरों से काम कराते थे, वे पूंजीपतियों के समर्थन में खड़े हुए। मजदूर वर्ग के लिए यह क्रांतिकारी समर्थन था। तथा पूंजीपतियों के लिए भी उन्हें मिला समर्थन क्रांतिकारी था। इससे दूसरों से खेती कराने वाले भूस्वामी किसानों और पूंजीपतियों के बीच वर्ग तथा शक्ति के सम्बंध विकसित हो गये।

कृषक अर्थव्यवस्था एक प्रकार से ग्रामीण अर्थव्यवस्था है। इसमें खेती–किसानों से जुड़े लोग शामिल हैं जिसमें घरके सदस्य उत्पादन की प्राथमिक इकाई है। उत्पादन की मात्रा, खपत का स्तर तथा बचा हुआ उत्पाद आदि का प्रमुख घटक परिवार है। परिवार की अर्थव्यवस्था की आय का मुख्य स्रोत कृषि है जिसके परिवार के सदस्य अपने श्रम का निवेश करते हैं। किसानों की अर्थव्यवस्था इस प्रकार विकसित हुई है कि उसमें किसान की आजीविका से सम्बंधित अनेक आयाम शामिल हैं – सांस्कृतिक, सामाजिक तथा भौतिक आयाम।

9.3 भारतीय किसान तथा कृषक संरचना

भारत में बड़ी संख्या में लोग गांवों में निवास करते हैं और उनकी आजीविका का मुख्य साधन खेती हैं। भारत में किसानों की संरचना जाति, नृजातीयता, धर्म, भाषा आदि आधारित है। थॉरनर (1966) ने भारत में कृषक वर्ग की संरचना का अध्ययन करते समय तथा भारतीय कृषि की प्रकृति का अध्ययन करते समय विभिन्न प्रकार के कृषक वर्गों का पता लगाने के लिए तीन सिद्धांत तैयार किये थे। तीन सूत्री सिद्धांत में जमीन से प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की आमदनिया शामिल है, (जैसे किराया, फसल तथा वेतन)। अधिकारों की प्रकृति (जैसे स्वामित्व तथा किराएदारी, फसल का हिस्सा या कोई अधिकार नहीं) तथा खेत में किया गया काम (कोई काम नहीं करना, आंशिक काम, पारिवारिक श्रम द्वारा किया गया काम, वेतन के बदले काम करना आदि)।

थॉरनर (1966) के अनुसार यह मापदंड भारत में कृषि कार्यों से जुड़े लोगों के तीन वर्गों की अलग–अलग पहचान करने में मदद करता है। भारत में इन तीनों वर्गों में जो लोग शामिल हैं, उन्हें भूस्वामी, किसान तथा मजदूर कहा जाता है, भूस्वामी खेती की जमीन के मालिक होते हैं – ये संपन्न व अमीर होते हैं। किसान उन्हें कहते हैं जो खेतों में स्वयं काम करते हैं। वे या तो अपनी जमीनों के मालिक होते हैं या अन्य भूस्वामियों के खेतों को किराये पर लेकर उनमें खेती करते हैं। इन किसानों को भी दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है – छोटे भूस्वामी, तथा जीवन–निर्वाह के लिए दूसरों के खेत किराये पर लेकर उनमें फसलें उगाने वाले किसान। कृषि पर निर्भर तीसरा वर्ग जो मजदूर कहलाता है, उसे भी तीन उपविभागों में बांटा जा सकता है – कुल कम जमीन वाले गरीब किसान, बटाई पर खेती करने वाले तथा भूमिहीन मजदूर।

गतिविधि 1

मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास या कहानियां पढ़िए अथवा प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार श्रीलाल शुक्ल का साहित्य पढ़िए। अपनी स्थानीय भाषा में इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। अब उनके लेखन के आधार पर ग्रामीण जीवन पर एक आलेख तैयार कीजिए। अपने विचारों अपने अध्ययन केंद्र पर जाकर अपने साथियों के साथ प्रकट कीजिए।

डेनियल थोरनर (1966), भू–स्वामियों की आय का मुख्य स्रोत उनकी जमीन पर उनका मालिकाना हक था। बड़े भूस्वामी जमींदार कहलाते थे। वे अपनी कृषि–भूमि को ऊँचे किरायों पर फसल उगाने वाले किसानों को देते थे। उन्हें जमीन किराये पर उठाने के बदले मोटी रकम मिल जाती थी, फिर भी वे मजदूरों की पगार में कटौती करते रहते थे। बड़े भू–स्वामी कृषि संबंधी कोई काम नहीं करते थे। वे अच्छी पैदावार के लिए भूमि प्रबंधन का दायित्व भी अपने हाथों नहीं रखते थे। दूसरी श्रेणी के भू–स्वामी भी बड़ी जमीनों के मालिक थे। उनकी जमीने उनके निवास स्थान के निकटवर्ती क्षेत्रों में होती थीं। ये भी संपन्न होते थे और खेतों में स्वयं काम नहीं करते थे। वे मजदूरों से खेतों में काम करवाते थे और स्वयं उनके कामों का निरीक्षण करते थे। मजदूर ही खेतों में काम करते थे और भूमि–प्रबंधन करते थे या तो जमीनों पर इनके अधिकार पारंपरिक होते थे या उनके अपनी जमीनों के अधिकारों पर वैधानिक अधिकार भी होते थे। परन्तु वे मालिकों के बराबरी के नहीं होते थे।

किसानों को अन्य श्रेणियों में छोटे भूस्वामी होते हैं जो स्वयं अपने खेतों में काम करते हैं। वे केवल फसल काटने के लिए मजदूरों को काम पर लगाते हैं, अन्य सारे काम स्वयं करते है। दूसरी ओर वे किसान होते हैं जो बहुत सारी जमीनें किराये पर ले लेते हैं और इन खेतों में काम करके फसलें उगाने के इनके अधिकार सुरक्षित रखते हैं। किसानों की तीसरी श्रेणी में वे मजदूर आते हैं जो दूसरों के खेतों में काम करके गुजारा करते हैं। वे कुछ जमीन फसल उगाने के लिए भू–स्वामियों से ले लेते हैं और उसमें होने वाली पैदावार से अपने परिवारों का जीवन–निर्वाह करते हैं। उनके जमीनों पर काम करने के अधिकार अस्थायी होते हैं। वे इसके बदले मजदूरी प्राप्त करते हैं और यह मजदूरी भूमि की पैदावार से ही प्राप्त करते हैं। अतः वे उतना ही पैदा करते हैं जितने में उनकी मजदूरी निकल आए। दूसरी उप श्रेणी में फसलों में साझेदारी आती है। वे खेतों में दूसरों के लिए काम करते हैं और फसल में हिस्सा लेते हैं। अंतिम उप श्रेणी में भूमिहीन मजदूर आते हैं। वे मजदूरी पर दूसरों के खेतों में काम करते हैं और मजदूरी के रूप में जो धन उन्हें प्राप्त होता है उससे अपने परिवारों का खर्च चलाते हैं।

9.4 कृषक अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

किसानों तथा किसानों की अर्थव्यवस्था पर ऊपर दिये गये विवरण के आधार पर अर्थव्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं दिखाई पड़ती हैं।

1) कृषक अर्थव्यवस्था में उत्पादन की प्रथम इकाई किसानों के परिवारों के सदस्य हैं जो छोटे या बड़े हो सकते हैं।

2) कृषक अर्थव्यवस्था में परिवार का आकार प्रौद्योगिक आवश्यकताओं तथा आर्थिक आवश्यकताओं के आधार पर तय किया जाता है।

3) किसानों के परिवार प्रायः बड़े होते हैं और तीन–तीन पीढ़िया एक साथ रहते हैं। छोटे परिवार में भी माता–पिता तथा अविवाहित बच्चे सब एक साथ रहते हैं।

4) वंशानुगत चली आ रही खेती पर परिवार के सारे सदस्य निर्भर करते हैं।

5) किसान गहन कृषिवादी होते है और पूरी तरह खेती के कामों से ही जुड़े रहते हैं और इसीलिए वे प्रायः आसीन होते हैं। वे कृषि भूमि के निकटवर्ती क्षेत्र में निवास करते हैं। वे एक तरह से एक ही जगह बसे आदिवासी होते हैं। अन्य आर्थिक समाज जो कृषक उत्पादन प्रणाली से पहले हुआ करते थे, उनसे ये बिल्कुल अलग प्रकार के होते हैं।

6) कृषक समाज अक्सर छोटे होते हैं, जिनके सदस्य अधिकतर परम्पराओं पर निर्भर करते हैं तथा वे अपने निवास स्थान तथा अर्थव्यवस्था में किसी तरह का बदलाव नहीं चाहते।

7) किसान समुदायों को समाज में उनके ग्रामीण रहन–सहन के कारण अन्य समाजों की तुलना में पिछड़ा हुआ समझा जाता है इसका कारण है उनका शहरी आबादी से कटा होना। इससे उनमें एक प्रकार की हीनता की भावना आ जाती है और वे अज्ञानी तथा गरीब ही रह जाते हैं। कुछ विद्वान यह दावा करते हैं कि किसानों की गरीबी का कारण केवल यह है कि वे जीवन भर केवल खेती पर निर्भर रहते हैं। और यह निर्भरता वंशानुगत है।

8) कृषक अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता लैंगिक आधार पर श्रम विभाजन है। किसानों के बीच रूतवे (शक्ति) पर आधारित संबंध होते हैं, जिसका निश्चयन भी लैंगिक आधार पर किया जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) किसान कृषक कौन होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कृषक समाज में उत्पादन की प्राथमिक इकाई क्या होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) डैनियल फॉर्नर ने भारतीय कृषक वर्गों की तीन मौलिक श्रेणियां चिन्हित की हैं उनके नाम बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

4) किसानों को अक्सर पशुपालक कहा जाता है (सत्य) (असत्य)

5) किसान ..... समूह होते हैं (समरूपी अथवा विषमरूपी)।

9.5 किसानों की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति

कृषक समाज अथवा कृषक अर्थव्यवस्था दोनों ही जटिल होते हैं उनके विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। जिनका एक साथ अध्ययन करना जटिल है। इसका कारण यह है कि कृषक अर्थव्यवस्था का हर रूप अलग–अलग दिखाई पड़ता है। इनमें से कुछ विशेषतायें ऐसी हैं जो कृषि पूर्व समाजों में भी पाई जाती थीं। कुछ ऐसे आयाम हैं जो किसानों की जीवन पद्धतियों तथा उनकी अर्थव्यवस्था में शामिल है। इन आयामों में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भौतिक आयाम शामिल हैं। किसान प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। अतः उनकी समृद्धि तथा शक्ति सरकार से उनके संबंधों द्वारा नियंत्रित होती है। कुछ विद्वान जिन्होंने कृषक समाजों का अध्ययन किया है उन्हें इसकी अनेक विशेषतायें देखने को मिली हैं। वे किसानों आर्थिक प्रतिमानों तथा सामाजिक, राजनैतिक स्थितियों पर जोर देते हैं। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जिन्होंने कृषक समाजों का अध्ययन सांस्कृतिक तथा आर्थिक आधारों पर किया है, उन्होंने कुछ विशेष स्पष्ट घटकों का विवरण दिया है जिनकी व्याख्या नीचे की जायेगी।

9.5.1 आजीविका का एकमात्र आधार कृषि भूमि

कृषक परिवार पूरी तरह उन्हीं संसाधनों पर निर्वाह करने के लिये विवश होते हैं जो उन्हें कृषि कार्य से प्राप्त होते हैं, क्योंकि उनकी सारी गतिविधियां खेती–किसानी से जुड़ी होती हैं। उनकी आजीविका पूरी तरह कृषि से प्राप्त संसाधनों पर ही निर्भर करती है। इस प्रकार वे भूमिहीन मजदूरों से पूरी तरह अलग वर्ग हैं। कृषक अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि खेती के लिये प्राप्त जमीन और उसमें होने वाला उत्पादन बाजार की अर्थव्यवस्था से संबंध नहीं रखता। अधिकतर

किसान समाजों के भूमि पर पारम्परिक अधिकार होते हैं। और यह अधिकार पूरी तरह सुरक्षित होते हैं, परन्तु कुछ कृषक समाज ऐसे भी हैं जिनकी जमीनें पारिवारिक संरचना से बाहर चली जाती हैं। कृषक समाज में जमीन ही उत्पादन का स्रोत है। जमीन के हर टुकड़े की एक कीमत होती है जो किसानों की आजीविका सुनिश्चित करती हैं।

9.5.2 पारिवारिक श्रम

कृषक समाज की अर्थव्यवस्था की एक मौलिक विशेषता यह है कि यह पारिवारिक सदस्यों के श्रम पर निर्भर करती हैं और इसे पूंजीवादी समाज से अलग पहचान देती है। किसानों ने कृषि में उत्पादन के लिये परिवार श्रम की प्रथा को पारम्परिक रूप से अपनाया हुआ है। हर परिवार के सदस्य अपने उपयोग की चीजें पैदा करने के लिये अथवा अपनी आर्थिक समृद्धि के लिये खेतों में काम करते हैं। कभी–कभी ऐसे अवसर आते हैं जब किसानों को खेतों में काम करने के लिये बाहर से मजदूर बुलाने पड़ते हैं। ऐसा प्रायः फसल की कटाई के समय होता है। क्योंकि तैयार फसल को जल्दी से जल्दी खेतों में जाकर काटना जरूरी हो जाता है। और उस समय मानव संसाधन की ज्यादा जरूरत पड़ती हैं। व्यापारिक उद्देश्यों के लिये खेती करने के लिये भी मजदूरों की जरूरत होती है। लेकिन अपने जीवन निर्वाह तथा खाद्यान्न की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये की जाने वाली खेती में परिवार के सदस्य ही काम करते हैं।

9.5.3 पूंजी का संचयन

पूंजीवादी उत्पादन में पूंजी का संचयन और मांग प्राथमिक आवश्यकता होती है। यद्यपि लाभ के रूप में पूंजी की व्याख्या करने में घरेलू उत्पादन प्रणाली में अस्पष्टता रहती है, क्योंकि कृषक समाज खेतों में केवल अपना जीवन निर्वाह करने के लिए काम करते हैं उनका उद्देश्य व्यापारिक नहीं होता है (एलिस, 1988)। इस प्रकार लाभ के लिये खेती करने और जीवन निर्वाह के लिये खेती करने में मौलिक अंतर होता है। लाभ के लिये खेती पूंजीवादी समाज में की जाती है तथा जीवन निर्वाह के लिए खेती कृषक परिवारों द्वारा की जाती है (जिसकी बड़ी विशेषता यह है कि इसमें परिवार के वे सदस्य काम करते हैं जिन्हें कृषि उत्पादों की आवश्यकता अपने उपभोग के लिए होती है)। परिवार दो उद्देश्यों के लिये खास तरह की पूंजी खरीदते हैं। जिसमें एक है – उत्पादन तथा दूसरा खपत। उत्पादन के उद्देश्य को पूरा करने के लिये खेतों में हल चलाना पड़ता है, सिंचाई के लिए जल पम्प लगाने पड़ते हैं तथा उत्पादित अनाज के शोधन के लिये मशीनें लगानी पड़ती हैं। खपत के उद्देश्य की पूर्ति के लिये उत्पादों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की व्यवस्था करनी पड़ती है। बैलगाड़ी आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। खेती किसानी में आमदनी की दर पहले से सुनिश्चित नहीं की जा सकती। इस आधार पर कृषक समाज को पूंजीवादी समाज से अलग पहचान दी जा सकती है।

9.5.4 जीवन निर्वाह/खपत के लिये उत्पादन

कृषक समाजों की एक और बड़ी विशेषता यह है कि उनकी निर्वाह प्रणाली दूसरों से भिन्न है। जीवन निर्वाह के लिये उत्पादन की मात्रा कृषि भूमि से प्राप्त की जाती है जिसकी खपत परिवार में होती है। किसान लाभ कमाने के लिये अपने उत्पादों को बाजारों में नहीं बेचते इसीलिये उन्हें जीवन निर्वाह करने वाले किसान कहा जाता है।

जमीन में पैदा होने वाले अतिरिक्त उत्पादों को वे प्रायः भविष्य के उपयोग के लिये सम्भाल कर रखना पंसद करते हैं। उनकी इसी प्रवृत्ति के कारण बाजार की अर्थव्यवस्था में उनकी भागेदारी आंशिक ही रहती है, अर्थात अपने उत्पादन का बहुत छोटा हिस्सा ही किसान आवश्यकता पड़ने पर बाजार में बेचते हैं। वैश्विक स्तर पर देखें तो अपने खेतों में काम करने वाले परिवार के लोग बौद्धिक रूप से अधिक सक्षम होते हैं वे कृषि कौशल के अधिक जानकार होते हैं और अपने उपयोग के साथ–साथ व्यापारिक उद्देश्य के लिये भी अच्छी फसलें उगाते हैं। और कभी–कभी भारी मुनाफा भी कमाते हैं उन्हें किसान नहीं कहा जाता। वे व्यापार के लिये खेती करते हैं। कभी–कभी दो या दो से अधिक परिवार मिलकर सामूहिक खेती द्वारा अच्छा उत्पादन करते हैं और भारी मुनाफा कमाते हैं। एक जैसी वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय के लिए पारस्परिकता एक सांस्कृतिक विशेषता मानी जाती है। इस प्रक्रिया में जो विनिमय होता है वो बाजार की कीमत के अनुसार नहीं होता बल्कि इसके साथ सांस्कृतिक मूल्य अधिक जुड़े होते हैं।

9.6 किसानों की राजनैतिक अर्थव्यवस्था

प्रायः बाहरी संगठनों द्वारा किसानों का राजनैतिक शोषण होता है। इसके लिये किसानों की राजनैतिक अर्थव्यवस्था जिम्मेदार होती है। जहां व्यापक रूप से बाजार मूलक अर्थव्यवस्था का विस्तार हो जाता है वहां इसकी संभावना अधिक बढ़ जाती है। बाजार की राजनीति द्वारा किसानों के शोषण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। ऐसे शोषण तथा बाजार की राजनीति के सामने घुटने टेकने की व्यवस्था से बचने के लिये यह आवश्यक है कि किसान जागरूक हो और अपने हितों की सुरक्षा के लिये संघर्ष करें, न कि बाहरी दबावों के आगे समर्पण कर दें। इसलिये किसान बाजारों के साथ लम्बे समय तक चलने वाले आर्थिक सौदे नहीं करते अथवा यह कहें कि वे बाजारों की विचारधाराओं को पूरी तरह स्वीकार नहीं करते। उनके उत्पादन के केन्द्र में अपने जीवन निर्वाह और आजीविका चलाना प्रमुख रूप से मौजूद रहता है। कृषक समाजों के नेता स्वार्थी प्रवृत्ति के होते हैं और वे अपने निहित स्वार्थों के लिये कृषक अर्थव्यवस्था में राजनैतिक मामले शामिल कर देते हैं। आमतौर पर किसानों की राजनैतिक प्रकृति उनके परिवारों में राजनैतिक विभाजय से तय होती है। यद्यपि ग्रामीण किसान पारिवारिक स्तर पर एकता के सूत्र से मजबूती से बंधे होते हैं। वंशानुगत सामाजिक संरचना में किसान समाज के बीच जमींदार तथा संपन्न किसान ऊँचे स्थान पा जाते हैं और वे पूरे कृषक समाज पर अपना प्रभुत्व जमाने के प्रयास करते रहते हैं। गरीब और भूमिहीन किसान उनके प्रभाव से नहीं बच पाते क्योंकि इनमें आपसी एकता का अभाव रहता है। उसकी एक वजह यह होती है कि वे अपने निहित स्वार्थों के कारण जमींदार के नियंत्रण में रहते हैं और अपने निहित स्वार्थों के कारण जमींदार उन्हें एक नहीं होने देते। किसानों की वंशागुण संरचना में जिन लोगों की केन्द्रीय भूमिका होती है वे किसानों की अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे किसान आंदोलनों का सहारा लेते हैं।

राजनैतिक अर्थव्यवस्था का मत संसाधनों पर नियंत्रण से जुड़ा होता है और संसाधनों पर नियंत्रण के कारण कृषि भूमि के पुनर्वितरण की बात अक्सर उठाई जाती रही हैं। जब भूमि पर किसानों के अधिकारों की बात उठती है तो कृषि भूमि पर मालिकाना हकों के संपूर्ण और अंतिम विभाजन की बात अंतिम रूप नहीं ले पाती। भूमि पर

किसानों का हक पारम्परिक अधिकारों के आधार पर तय किया जाता है अर्थात पारम्परिक से जो भूस्वामी है उनकी जमीन पर उन्हीं का हक रहेगा परन्तु जमीन के इस्तेमाल और वैधानिक रूप से भूमि के स्वामित्व को लेकर समूचे किसान समाज में भू–स्वामियों के बीच बात उठती रहती है कि जमीन पर मालिकाना हक केवल उन्हीं का रहना चाहिए जिनका पारंपरिक रूप से है या खेतों में काम करने वाले उन लोगों को भी मिलना चाहिए जो खेती किसान के सारे काम करते परन्तु फिर भी भूमिहीन हैं। कृषक समाजों में शक्ति आधारित सम्बंधों बनाम राजनैतिक संगठन कृषक अर्थव्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। फिर भी स्वामित्व चाहे जिस तरह का हो, भूमि तथा शक्ति परस्पर निर्भर है अर्थात् शक्ति जमीन से प्राप्त होती है तथा जमीन को ताकत में परिवर्तित किया जा सकता है।

शोषण के शिकार केवल किसान ही नहीं हैं, किसानों का शोषण केवल बड़े भूस्वामियों द्वारा ही नहीं किया जाता है, अन्य घटक भी है जो किसानों का शोषण करते हैं, जैसे बिचौलिए या दलाल जो कृषि उत्पादन की राजनैतिक अर्थव्यवस्था में बिचौलियों की भूमिका निभाते हैं। ये बिचौलिए शक्तिशाली तथा कमजोर वर्गों के बीच में खड़े हो जाते हैं और शक्तिशाली समूहों से मिलकर कमजोर किसानों का शोषण करते हैं।

गतिविधि 2

तुमने पढ़ा होगा या समाचारों में सुना होगा कि भारत सरकार ने कृषि सम्बंधी तीन कानून पास किए हैं। भारत के सभी भागों से आये प्रमुख किसानों ने इन कानूनों का विरोध किया है। इसके विरोध में जो किसान आंदोलन हो रहा है, उसे केंद्र में रखते हुए 2 पृष्ठों का एक आलेख तैयार कीजिए जिसमें नगरीय क्षेत्र के घेराव तथा कृषक अर्थव्यवस्था का वर्णन हो तथा जो लोग इस आंदोलन में शामिल है, उनकी भूमिका का विश्लेषण कीजिए। अपने अध्ययन केंद्र पर मित्रों के साथ इस पर चर्चा कीजिए।

9.7 किसान आंदोलन

भारत में किसान आंदोलनों का सिलसिला 19वीं शताब्दी में पूर्वी बंगाल में हुए किसान आंदोलन से देखा जा सकता है। जब जमींदारों ने किसानों से जमीनें छीनने के लिए शक्ति का इस्तेमाल करते हुए उनका शोषण करना शुरू कर दिया था। तब किसानों ने एक जुट होकर इस शोषण का विरोध किया। विरोध करने के लिए किसान एकत्रित हुए और उन्होंने उन जमीनों पर जिनसे उन्हें बलपूर्वक हटाया जा रहा था, अपनी मालिकाना हक की मांग उठाई और जोरदार आंदोलन हुआ। इसके परिणामस्वरूप 1885 में भूमि किरायेदार अधिनियम बना। अब तक भारत में हुए किसान आंदोलनों को तीन चरणों में देखा जा सकता है। पहला चरण – 1857 से 1921 तक – इस दौरान आंदोलन की गति धीमी रहीं क्योंकि किसानों को सुव्यवस्थित नेतृत्व नहीं मिल पाया था। दूसरा चरण – 1923 से 1946 तक – इस दौरान किसान एक प्रबल वर्ग के रूप में उभर कर आये और उन्होंने किसानों की समस्याओं को ऊँची आवाज में व्यवस्थित ढंग से उठाया। तीसरा चरण – आजादी के बाद का दौर – स्वतंत्र भारत की सरकार जब किसानों की समस्याओं के सही समाधान तलाशने में असमर्थ रही तो किसान आंदोलन में उतरे – इन तीनों चरणों के किसान आंदोलनों पर विस्तार से विचार किया जायेगा।

9.7.1 प्रथम चरण 1857–1921

अंग्रेजों ने किसानों के शोषण तथा लगान में वृद्धि की। इससे देश के लोगों में ब्रिटिश सरकार के प्रति गुस्सा भड़क उठा। इसी दौर में बार–बार देश को भूखमरी का सामना करना पड़ा, देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। इससे किसान आंदोलन पर उतर आए। इस चरण में देश भर में कई महत्वपूर्ण आंदोलन हुए – जिनमें संथाल आदिवासियों का अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह, दक्षिण भारत में दंगे, बंगाल में किसानों का विद्रोह, अवध बगावत, पंजाब संघर्ष आदि। इस चरण के उत्तरार्ध में दो अन्य महत्वपूर्ण आंदोलन हुए जिनका नेतृत्व भारत के महान नेता महात्मा गांधी ने किया। ये थे – बिहार में चम्पारण आंदोलन तथा खेड़ा के किसानों का सत्याग्रह आंदोलन। यद्यपि इन दोनों आंदोलनों से पहले, कांग्रेस की नीतियां जमींदारों के हितों के संरक्षण के अनुकूल थीं। परन्तु इन दोनों आंदोलनों के दौरान अंग्रेजों द्वारा लगाये गये भारी लगान के विरुद्ध किसानों में विद्रोह की चिनगारी भड़क उठी। अब उनका निशाना उनके शोषण के लिए जिम्मेदार जमींदार नहीं थे।

9.7.2 द्वितीय चरण 1923–1946

जब कांग्रेस पूंजीपतियों के हितों के संरक्षण में जुटी थी, किसानों को यह बात बुरी लगी कि कांग्रेस उनके साथ खड़ी होने के स्थान पर शोषक वर्ग पूंजीपतियों के साथ खड़ी होने के स्थान पर शोषक वर्ग पूंजीपतियों के साथ खड़ी है। इससे किसानों ने अपने बीच से ही किसान नेता चुने और वे किसानों के शोषण के विरुद्ध किसानों के आंदोलन की अगुवाई करने लगे। अपने हितों के लिए किसान वर्ग संघर्ष पर उतारू हो गये। पूरे देश में किसान संगठन बने और वे किसान आंदोलन से जुड़े गये। 1935 में किसानों की इच्छाओं और आवश्यकतों को केंद्र रखते हुए अखिल भारतीय किसान सभा बुलाई गई। उन दिनों भारत में मौजूद समाजवादी दल तथा साम्यवादी दल ने किसानों का समर्थन किया। किसानों पर जो तरह–तरह के दबाव बनाये गये थे उनके विरोध में देश के विभिन्न भागों में किसान सभा ने विद्रोह किया और किसानों की समस्याओं को उठाया। आंधप्रेदश में निपटान विरोधी आंदोलन (Anti-Settlement Agitation), बिहार जमींदारी उन्मूलन आंदोलन (Abolition of Zamidari System), दक्षिण भारत में अन्यायपूर्ण वन–कानून के विरुद्ध विद्रोह, तथा भारत के अनेक राज्यों में जमींदारों के विरुद्ध आंदोलन। इन आंदोलनों ने सत्तारूढ़ दल तथा कांग्रेस पर इतना दबाव बनाया कि कृषि योजना का गठन करना पड़ा। इसके अलावा कांग्रेस किसानों की मांगें पूरी नहीं कर सकी और किसानों का असंतोष दूर नहीं हुआ। क्योंकि जमींदारों का कांग्रेस पर बहुत दबाव था।

9.7.3 आजादी के बाद का चरण

1947 में भारत को आजादी मिलने के बाद भी, सरकार किसानों की समस्याओं का समाधान तलाशने में असमर्थ रही। फिर भी कांग्रेस कृषि क्षेत्र के पूंजीपतियों को विश्वास में लेने में सफल रही, उन्होंने किसानों को अपने आंदोलन को और बढ़ाने के लिए उकसाया। आजादी के बाद बनी कृषि–नीतियों ने संघर्षरत किसानों को कोई लाभ नहीं पहुंचाया। इससे किसानों की तकलीफें और बढ़ गई। परिणामस्वरूप पूरे देश में किसानों के अनेक आंदोलन हुए जैसे, नील आंदोलन (Indigo Movement), मोपला आंदोलन (Moplah Revolt), तेभागा आंदोलन (Tebhaga Movement), तेलंगाना आंदोलन (Telangana Movement) आदि। आंध्र प्रदेश में कांग्रेस ने आंध्र

प्रांतीय किसान सभा ने आंदोलन रोकने के प्रयास किये, परन्तु वह असफल रही। क्योंकि यह किसान सभा जमींदारों के इशारों पर काम कर रही थी। परन्तु साम्यवादी दल गरीब किसानों और मजदूरों के हितों के समर्थन में जुटा। परन्तु धरातलीय स्तर पर किसानों के हितों संरक्षण के लड़ने वाली की संख्या बहुत कम थी।

बोध प्रश्न 2

1) वे तीन आयाम कौन–कौन से हैं जो किसानों की अर्थव्यवस्था तथा जीवन पद्धतियों को समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) किसानों की आजीविका के मूलभूत स्रोत क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) पारिवारिक श्रम से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) किसान परिवार दो उद्देश्यों से पूंजी की खरीदारी करते हैं। नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

5) आजादी के बाद भारत में भड़के चार महत्वपूर्ण आंदोलनों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

9.8 सारांश

इस इकाई में हमने किसानों की सामान्य धारणाओं का वर्णन किया तथा उनकी आर्थिक प्रणालियों की व्याख्या की। हमने किसानों की उन संरचनाओं का वर्णन किया जो भारत में पाई जाती हैं। कृषक समाज को अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति दोनों के संदर्भ में समझा जा सकता है। इस अध्याय में कृषक समाज के विविध पक्षों पर भी प्रकाश डाला गया जिनसे पता लगता है कि भारत की अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति में कृषक समाज किस तरह शामिल है। इसमें किसानों की अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का भी वर्णन किया गया तथा कृषक अर्थव्यवस्था का राजनैतिक पहलू क्या है। इस इकाई में भारत में विभिन्न काल खंडों में हुए किसान आंदोलनों की भी चर्चा की गई जिन्हें तीन चरणों में विभाजित किया गया है।

इस प्रकार इस अध्याय में किसानों की अर्थव्यवस्था के लगभग सभी प्रमुख पक्षों पर सिलसिलेवार विचार किया गया है।

9.9 संदर्भ

ए.वी. चेनोव (1966). *द थ्यौरी ऑफ पीजेंट इकोलॉमी.* द अमेरिकन इकोलॉगिक एसोसिएशन।

डी. एन. धनाग्रे (1983). *पीजेंट मूवमेंट इन इंडिया 1920–1950.* ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस।

एफ. ईलिस (1988). *पीजेंट इकोनॉमिक्स.* ब्रिटेनः केम्ब्रज यूनीवर्सिटी प्रैस।

ए. क्रोएबर (1948). एन्थ्रोपोलॉजी. न्यूयार्कः हरकोर्ट।

सी. जेम्स स्कॉट (1976). *द मोरल इकोनॉमी ऑफ द पीजेंटः रिवेलियन एण्ड सबसिस्टेन्स इन साउथ ईस्ट एशिया.* येल यूनीवर्सिटी प्रैस।

ए. एन. सेठ (1984). *पीजेन्ट ऑर्गेनाइजेशन इन इण्डिया.* : दिल्लीः बी. आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन।

डी. थॉर्नर (1966). *चैनोवस कन्सेप्ट ऑफ पीजेंट इकोनॉमी.* इन डी. फोर्नर एट. एल. (एडस, ए. बी. चेनल ऑन द थ्योरी ऑफ पीजेन्ट इकोनॉमी, (xi-xxiii), आई.एल. होमबूड : द अमेरिकन इकोनॉमिक एसोशियेशन।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) किसान एक व्यक्ति होता है अथवा एक समरूप समूह होता है जो खेतों में काम करता है, विशेषरूप से जो अपनी आजीविका के लिये कृषि कार्यों में संलग्न रहता है।

2) घरेलू

3) मालिक, किसान और मजदूर

4) गलत

5) समरूप

बोध प्रश्न 2

1) सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भौतिक आयाम

2) भूमि

3) परिवार श्रम का अर्थ है वह श्रम जिसमें परिवार के सदस्य उत्पादन प्रक्रिया के दौरान अपनी ऊर्जा खर्च करते हैं।

4) वे दो उद्देश्य जिनके लिये परिवार पूंजी की खरीदारी करते हैं, – उत्पादन और खपत।

5) नील आन्दोलन, मोपला आन्दोलन, तेभागा आन्दोलन तथा तेलगाना आन्दोलन।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY